2004 Pandit Hira Lal Siddhant Shastri: Person and his work

By Pandit Arun Kumar Jain (in Anekant, 2004)

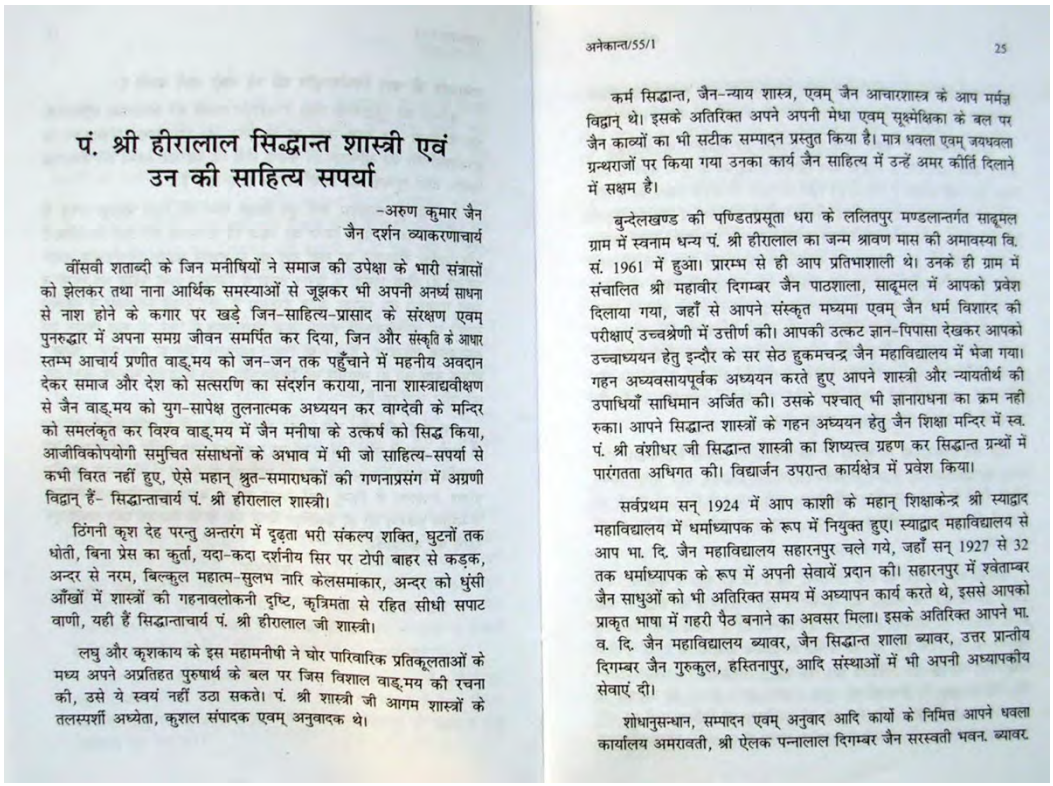

पं. श्री हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री एवं उन की साहित्य सपर्या

-अरुण कुमार जैन
जैन दर्शन व्याकरणाचार्य

वींसवी शताब्दी के जिन मनीषियों ने समाज की उपेक्षा के भारी संत्रासों को झेलकर तथा नाना आर्थिक समस्याओं से जूझकर भी अपनी अनर्घ्य साधना से नाश होने के कगार पर खड़े जिन-साहित्य-प्रासाद के संरक्षण एवम् पुनरुद्धार में अपना समग्र जीवन समर्पित कर दिया, जिन और संस्कृति के आधार स्तम्भ आचार्य प्रणीत वाङ्मय को जन-जन तक पहुँचाने में महनीय अवदान देकर समाज और देश को सत्सरणि का संदर्शन कराया, नाना शास्त्राद्यवीक्षण से जैन वाङ्मय को युग-सापेक्ष तुलनात्मक अध्ययन कर वाग्देवी के मन्दिर को समलंकृत कर विश्व वाङ्मय में जैन मनीषा के उत्कर्ष को सिद्ध किया, आजीविकोपयोगी समुचित संसाधनों के अभाव में भी जो साहित्य-सपर्या से कभी विरत नहीं हुए, ऐसे महान् श्रुत-समाराधकों की गणनाप्रसंग में अग्रणी विद्वान् हैं- सिद्धान्ताचार्य पं. श्री हीरालाल शास्त्री।

ठिंगनी कृश देह परन्तु अन्तरंग में दृढ़ता भरी संकल्प शक्ति, घुटनों तक धोती, बिना प्रेस का कुर्ता, यदा-कदा दर्शनीय सिर पर टोपी बाहर से कड़क, अन्दर से नरम, बिल्कुल महात्म-सुलभ नारि केलसमाकार, अन्दर को धुंसी आँखों में शास्त्रों की गहनावलोकनी दृष्टि, कृत्रिमता से रहित सीधी सपाट वाणी, यही हैं सिद्धान्ताचार्य पं. श्री हीरालाल जी शास्त्री।

लघु और कृशकाय के इस महामनीषी ने घोर पारिवारिक प्रतिकूलताओं के मध्य अपने अप्रतिहत पुरुषार्थ के बल पर जिस विशाल वाङ्मय की रचना की, उसे ये स्वयं नहीं उठा सकते। पं. श्री शास्त्री जी आगम शास्त्रों के तलस्पर्शी अध्येता, कुशल संपादक एवम् अनुवादक थे।

कर्म सिद्धान्त, जैन-न्याय शास्त्र, एवम् जैन आचारशास्त्र के आप मर्मज्ञ विद्वान् थे। इसके अतिरिक्त अपने अपनी मेधा एवम् सूक्ष्मेक्षिका के बल पर जैन काव्यों का भी सटीक सम्पादन प्रस्तुत किया है। मात्र धवला एवम् जयधवला ग्रन्थराजों पर किया गया उनका कार्य जैन साहित्य में उन्हें अमर कीर्ति दिलाने में सक्षम है।

बुन्देलखण्ड की पण्डितप्रसूता धरा के ललितपुर मण्डलान्तर्गत साढ़मल ग्राम में स्वनाम धन्य पं. श्री हीरालाल का जन्म श्रावण मास की अमावस्या वि. सं. 1961 में हुआ। प्रारम्भ से ही आप प्रतिभाशाली थे। उनके ही ग्राम में संचालित श्री महावीर दिगम्बर जैन पाठशाला, साढ़मल में आपको प्रवेश दिलाया गया, जहाँ से आपने संस्कृत मध्यमा एवम् जैन धर्म विशारद की परीक्षाएं उच्चश्रेणी में उत्तीर्ण की। आपकी उत्कट ज्ञान-पिपासा देखकर आपको उच्चाध्ययन हेतु इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्द्र जैन महाविद्यालय में भेजा गया। गहन अध्यवसायपूर्वक अध्ययन करते हुए आपने शास्त्री और न्यायतीर्थ की उपाधियाँ साधिमान अर्जित की। उसके पश्चात् भी ज्ञानाराधना का क्रम नहीं रुका। आपने सिद्धान्त शास्त्रों के गहन अध्ययन हेतु जैन शिक्षा मन्दिर में स्व. पं. श्री वंशीधर जी सिद्धान्त शास्त्री का शिष्यत्त्व ग्रहण कर सिद्धान्त ग्रन्थों में पारंगतता अधिगत की। विद्यार्जन उपरान्त कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया।

सर्वप्रथम सन् 1924 में आप काशी के महान् शिक्षाकेन्द्र श्री स्याद्वाद महाविद्यालय में धर्माध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। स्याद्वाद महाविद्यालय से आप भा. दि. जैन महाविद्यालय सहारनपुर चले गये, जहाँ सन् 1927 से 32 तक धर्माध्यापक के रूप में अपनी सेवायें प्रदान की। सहारनपुर में श्वेताम्बर जैन साधुओं को भी अतिरिक्त समय में अध्यापन कार्य करते थे, इससे आपको प्राकृत भाषा में गहरी पैठ बनाने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त आपने भा. व. दि. जैन महाविद्यालय ब्यावर, जैन सिद्धान्त शाला ब्यावर, उत्तर प्रान्तीय दिगम्बर जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर, आदि संस्थाओं में भी अपनी अध्यापकीय सेवाएं दी।

शोधानुसन्धान, सम्पादन एवम् अनुवाद आदि कार्यों के निमित्त आपने धवला कार्यालय अमरावती, श्री ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन, ब्यावर

एवम् वीर सेवा मन्दिर, नई दिल्ली आदि संस्थाओं से आप सम्बद्ध रहे। इसके अतिरिक्त श्री भा.व.दि. जैन संघ मथुरा में प्रचार कार्यार्थ भी आप नियुक्त हुए।

उक्त संस्थाओं में कार्य करते हुए प्राचीन जैन साहित्य के अध्ययन में अपनी गहन अभिरुचि के कारण आप निरन्तर ज्ञानाराधन के पुण्य कार्य में सदा निरत रहे। यहाँ ज्ञातव्य है कि आपने जिन संस्थाओं में अपनी सेवाएँ प्रदान की, सभी संस्थाएँ समाज द्वारा संचालित थी। सामाजिक संस्थाओं में कार्यरत विद्वानों को किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, भुक्तभोगी एवम् तटस्थ विज्ञजन जानते हैं। इन संस्थाओं में कर्मचारियों को अपने सेवा कर्म के साथ संस्था के पदाधिकारियों की ख्याति-लाभादि की अपेक्षा का ध्यान भी रखना पड़ता है। कर्मचारियों के कार्य परिश्रम का मूल्यांकन उनकी योग्यता एवम् निष्ठा के आधार पर नहीं, अधिकारियों से उनकी अनुकूलता के आधार पर किया जाता है। यहाँ पर दिया जाने वाला कम वेतन कर्मचारि विद्वान् को तन से बेखबर होकर कार्य करने को मजबूर करता है। इन सब प्रकार की घोर कठिनाईयों आपदाओं को झेलते हुए और पारिवारिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के प्रहारों का मुकाबला करना पड़ता है।

इन सब विसंगतियों के कारण पं. श्री शास्त्री जी अपनी स्वाभिमानी वृत्ति एवम् स्पष्टवादिता के कारण संस्थाधिकारियों के प्रभाजन बने, परन्तु आपने जीवन शैली से कभी समझौता नहीं किया। यही कारण है कि उन्हें किसी भी सेवा में दीर्घकालिक स्थायित्व नहीं मिल सका, उन्हें अनेक स्थानों पर सेवार्थ जाना पड़ा।

उनकी स्पष्टवादिता का एक उदाहरण, जो उनके ही मुख से सुना था, यहाँ प्रस्तुत है। पण्डित श्री शास्त्री जी, उज्जैन में सेठ लालचन्द्र जी सेठी के यहाँ उनके परिवार को धार्मिक अध्ययनार्थ एवं मन्दिर जी में शास्त्र सभा करने हेतु नियुक्त थे। उन दिनों सेठ सा. का उनकी सामाजिक सेवाओं के लिये नागरिक अभिनन्दन समारोह का आयोजन था। सेठ सा. के व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डालने हेतु आपका नाम भी वक्ताओं की सूची में था। आपने सेठजी का परिचय देते हुए भरी सभा में कहा, यदि सेठ सा. के व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर यदि मूल्यङ्कन करते हुए मैं आपको प्रबन्धकीय क्षमता में 90/100, व्यवसाय दक्षता

95/100, धर्मज्ञान 85/100 समाज सेवा 85/100 अंक देना चाहता हूँ, परन्तु खेद है कि उदारता के प्रशनपत्र में बड़ी मुश्किल से 100 में से मात्र 10 नं. ही दे पा रहा हूँ। पण्डित जी की इस टिप्पणी से सेठ सा. आश्चर्य से स्तब्ध रहे, ऐसे स्पष्टवादी थे -पं. श्री हीरालाल जी।

स्पष्टवादिता, स्वाभिमानिता उनके स्वभाव का अभिन्न अंग था। तथापि वे पूर्ण व्यवहार कुशल एवम् सहयोगी स्वभाव के थे। आतिथ्य-सत्कार में उनका आत्मीयता पूर्ण-स्नेह अतिथि आगन्तुक को अभिभूत कर देता था। सरस्वती भवन ब्यावर से त्यागपत्र देने के उपरान्त उज्जैन से ट्रस्ट के मन्त्री ने मुझे चार्ज लेने भेजा, तब भवन की एक-एक पुस्तक एवं पुरामहत्त्व की वस्तुओं को जो कि उनहोंने बहुत संजोकर रखी थीं, मुझे संभलवाने में एक सप्ताह से अधिक समय लगा, इस पूर्ण अवधि में प्रतिदिन पण्डितजी ने स्वयं अपने पुत्र के साहाय्य से भोजन तैयार कर खिलाया जब तक वे ब्यावर में रहे उन्होंने मुझे व मेरे साथ गये पण्डित दयाचंद जी शास्त्री उज्जैन को अन्यत्र भोजन नहीं करने दिया। मुझे नीतिकार के वचन याद आये।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तर चेतांसि को विज्ञातुमर्हति॥

प्रात:काल चार बजे शय्यात्याग देना एवं दैनिक कर्म से निवृत्त होकर प्रात: पाँच बजे से प्रारम्भ हो जाता था उनका महनीय ज्ञानाराधन का यज्ञ। प्रात: 7.00 बजे देवदर्शन के उपरान्त दुग्धसेवन पश्चात् पुन: वही ग्रन्थावलोकन, संशोधन, संपादन एवम् अनुवाद कार्य की साधना। अपराहन 1.00 घण्टे विश्राम पुन: ग्रन्थाध्ययन! सायंकाल भोजन के पश्चात् भवन के चारों ओर परिक्रमा लगाते हुए स्तुतिपाठादि एवम् सायंकालीन भ्रमण! एक काल में ज्ञानाराधन, देव-भक्ति एवम् शारीरिक स्वास्थ्य तीनों क्रियाओं को सम्पन्न कर अपने बहुमूल्य समय को बचाकर वे सरस्वती देवी की आराधना में लगाते थे।

एक बार कोई व्यक्ति शंकाओं की सूची लेकर पण्डितजी के पास आये पण्डित जी ने बहुत कम समय में अर्थात् तीन-तीन चार-चार शंकाओं का समाधान ग्रन्थ के सन्दर्भोल्लेख मात्र द्वारा कर दिया, परन्तु वे सज्जन इतने मात्र से सन्तुष्ट नहीं थे, पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया पहिले आप स्वाध्याय करें

पीछे हमारे पास आवें। मैनें जब पण्डितजी को पूछा - पण्डितजी आपने इन्हें समय तो दिया ही नहीं। पण्डितजी ने मुझे अति संक्षिप्त उत्तर दिया - अरुण कुमार जी! उनके पास व्यर्थ चर्चा के लिये अनन्त समय है, मेरी आयु दिन प्रतिदिन क्षीणता की ओर अग्रसर है अत: समय कम और अभी बहुत काम करना है। सचमुच वे मरणपर्यन्त कार्य करते रहे मृत्यु से पाँच दिवस पूर्व अपने गाँव साढूमल से ब्यावर तक की यात्रा किसी ग्रन्थ प्रकाशन के निमित्त की थी, जो उनकी ज्ञानसाधना के प्रति कर्मठता एवम् जीवटपना का एक अनुकरणीय उदाहरण है।

देवदर्शन और जिन-स्तुति, नितप्रति पूजन करने का उनका नित्य नियम था। एकदा किसी श्रेष्ठी ने उन्हें कहा, पण्डितजी आप अष्टद्रव्य पूजन तो करते नहीं, उन्होंने उत्तर दिया मैं अष्टविध पूजन एक बार नहीं, बल्कि द्वादशांग पूजन पूरे दिवस पर्यन्त करता हूँ। ऐसे द्वादशांग जिनवाणी के महान् भक्त पूजक, आराधक अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी थे -पं. हीरालाल जी शास्त्री।

हीराश्रम साढूमल (ललितपुर) में श्रुताराधन करते हुए पूज्य पण्डितजी सन् 1981 की फरवरी मास में परलोक सिधार गये, उनकी पुद्गलमयी काया तो पुद्गल में ही विलीन हो गयी, परन्तु उनके द्वारा अनूदित, व्याख्यात एवम् सम्पादित ग्रन्थ-रचनाओं के माध्यम से वे साहित्य जगत् में सदाअमर रहेंगे, उनके द्वारा किये गये कार्य विद्वजगत् में प्रकाश स्तम्भ बनकर साहित्योद्धार की दिशा में सदा प्रदर्शक बने रहेंगे।

आदरणीय पण्डितजी के स्थितिकाल में प्राचीन आचार्यो के द्वारा प्रणीत साहित्य का विशाल भाग प्रकाश में नही आ सका था। बहुत आवश्यकता थी विविध शास्त्र भण्डारों बन्द, दीमक भक्षित होते हुए यत्र-तत्र विकीर्ण जैन साहित्य के संग्रहण पूर्वक उनके भाषा रूपान्तर एवम् आधुनिक पद्धति के अनुकूल सम्पादनोपरान्त प्रकाशन की। पण्डितजी ने ऐ. पन्नालाल सरस्वती भवन में सेवा के माध्यम से विकीर्ण साहित्य के संग्रह एवम् संरक्षण में तो अपनी पहली भूमिका निभायी। साथ ही, विशाल परिमाण में प्राचीन जैन साहित्य का सम्पादन एवम् अनुवाद कर उन्हें प्रकाशित कराया। विशेष बात यह है कि विषय विवेचन की सूक्ष्मता एवम् प्रतिपादन के विस्तार वाले

जैनाचार्य प्रणीत ऐसे ग्रन्थ महार्णवों का भी कार्य हाथ में लेने से पण्डित जी नहीं घबराए, जिन्हें देख अच्छे-अच्छे विद्वानों का भी गर्व खर्व होने लगता है। आप द्वारा मेरी जानकारी अनुसार निम्न ग्रन्थों की संपादन अनुवाद एवम् व्याख्या की गयी;-

आगम ग्रन्थ	1. धवल सिद्धान्त के 5 भाग पूर्ण एवम् छठा आधाभाग
कर्म-सिद्धान्त	2. प्राकृत पञ्चसंग्रह एवम् 3 कर्म प्रकृति
काव्य ग्रन्थ	4. दयोदय चम्पू, 5. सुदर्शनोदय महाकाव्य, 6. जयोदय महाकाव्य(पूर्वार्द्ध), 7. वीरोदय महाकाव्य एवम् 8. वीरवर्द्धमान चरित्र
न्याय एवम् दर्शन ग्रन्थ	9. प्रमेय रत्नमाला
श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ	10. दशवैकालिक सूत्र-प्रवचन संग्रह पाँच भाग 11. जीत सूत्र, 12. दशा श्रुतस्कन्ध 13. निशीथ सूत्र, 14. स्थानांगसूत्र व 15. समवांयाग सूत्र
श्रावकाचार	16. श्रावकाचार संग्रह पाँच भाग (जिसमें 33 श्रावकाचारों का संग्रह है) 17. वसुनन्दि श्रावकाचार एवम् 18. जैन धर्मामृत

इस ग्रन्थों का सकल कलेवर 20,000 पृष्ठों से भी ज्यादा है। मेरी जानकारी अनुसार अन्तिम समय में आपने श्वे. जैन ग्रन्थ नन्दिसूत्र की हिन्दी टीका तथा जैन मन्त्रशास्त्र ग्रन्थ तैयार किया था, जिनके प्रकाशन की सूचना उपलब्ध न हो सकी। जैन मन्त्र शास्त्र, ग्रन्थ विषयक जानकारी मुझे भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जी द्वारा प्राप्त हुयी थी।

षट्खण्डागम: प्रस्तुत ग्रन्थ अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर रूप हिमाचल से नि:सृत द्वादशांग वाग्गंगा की अवच्छिन्न परम्परा का ग्रन्थरत्न है। यह दिगम्बर परम्परा की अनुपम निधि है। भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि नि:सृत द्वादशांग जिन वाणी का ज्ञान, आचार्य परम्परा से क्रमश: ह्रास होता हुआ आ. धरसेन तक आया। धरसेन आचार्य अंगों एवम् पूर्वो के एक देश ज्ञाता थे एवम् श्रुत

संरक्षण से चिन्तित, यत: निमित्तज्ञान द्वारा उन्होंने जान लिया कि काल-दोष के कारण आगामी समय में अंगों के आंशिक ज्ञान को धारण करने की मेधावाले भी नहीं रहेंगे अत: लिपिबद्ध करने हेतु उन्होंने महिमा नगरी से मुनि श्री पुष्पदन्त एवम् भूतबली को आहूत कर उनकी परीक्षा कर, श्रुत-परम्परा के संरक्षणार्थ लिपिबद्ध करने के अभिप्राय से आगम सिद्धान्त सिखाया, जिन्होंने अपने गुरु की भावना के अनुसार प्रस्तुत ग्रन्थ को प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध किया।

प्रस्तुत आगमग्रन्थ में छह खण्डों में जीवट्ठाण, (2) खुद्दाबन्ध (3) बन्ध स्वामित्व विचय (4) वेदना (5) वर्गणा एवम् (6) महाबन्ध। इन छह खण्डों के प्रथम खण्ड में सत्संख्यादि अष्टविध अनुयोग द्वारों, 14 गुणस्थानों और मार्गणाओं का आश्रय पूर्ण विवेचन किया गया है। द्वितीय खुद्दाबन्ध में प्ररूपणाओं में कर्मबन्ध करने वाले जीवन का वर्णन किया गया है। तृतीय बन्ध स्वामित्वविचय में कितनी प्रकृतियों का बन्ध होता है और किसके नही। किन गुणस्थानों में कितनी प्रकृतियों का बन्ध, सत्व, उदय और व्युच्छित्तियाँ होती हैं आदि का सूक्ष्म एवम् विशद विवेचन है। चतुर्थ वेदनाखण्ड में कृति और वेदना अधिकार वर्णित है। पञ्चम वर्गणाखण्ड में 23 प्रकार की बन्धनीय वर्गणाओं का तथा स्पर्श, कर्म प्रकृति आदि का वर्णन मिलता है। षष्ठ महास्कंध में प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाग व प्रदेशबन्ध का सविस्तर वर्णन मिलता है

षट्खण्डागम ग्रन्थ पर आ. कुन्दकुन्द एवम् समन्त-भद्राचार्यादि अनेक आचार्यों ने टीका लिखी, परन्तु वे आज उपलब्ध नहीं। सम्भवत: सबसे विशालटीका 72 हजार श्लोक प्रमाण टीका ईसा की आठवीं/नवमी शताब्दी के महान् आचार्य वीरसेन स्वामी ने संस्कृत एवम् प्राकृत में लिखी। ग्रन्थ के प्रारम्भिक पांच भाग पर लिखित टीका धवला एवम् षष्ठ महाबन्ध खण्ड की टीका महाधवला के नाम से ज्ञात है।

धवला एवम् महाधवला टीका समन्वित उक्त आगम ग्रन्थ मूडबिद्री के ग्रन्थागार में कन्नड लिपि में सुरक्षित थीं, जो मात्र शोभा एवम् दर्शन की वस्तु थीं, जिनके बाहर आने एवम् लिप्यन्तर कराने की कहानी लम्बी है, उसके प्रकाशन हेतु ग्रन्थ के सम्पादन, एवम् अनुवाद कार्यों में प्रो. डॉ. हीरालाल जैन,

पं. श्री फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री वाराणसी आदि के साथ पण्डित श्री हीरालाल जी शास्त्री ने साहाय्य कर जिनवाणी की अविस्मरणीय सेवा की है। सम्पूर्ण धवला टीका 16 भागों में प्रकाशित हुयी, जिनमें से आपने प्रारम्भ के 5 भागों को सम्पादन और अनुवाद किया है, जैसा कि आपने स्वयं लिखा है परन्तु प्रारंभिक दो भागों में ही आपका नामोल्लेख है।

कन्नडी लिपि मूल से रूपान्तर करने में अनेकत्र भ्रमवश अनेक अशुद्धियाँ थी। उनके शुद्ध पाठ निर्धारण में विद्वान् संपादक पं. हीरालाल जी ने गहन अध्यवसाय किया है। उसमें जो प्रक्रिया एवम् नियम अपनाये गये प्रस्तावना में वर्णित हैं, जिससे संपादक की सूक्ष्मेक्षिका का ज्ञान मिलता है।

ग्रन्थ का इतिहास, आधारभूत पाण्डुलिपि में रचनाकार का काल निर्धारण सहित संपूर्ण परिचय टीकाओं एवंम् टीकाकारों की साङ्गोपाङ्ग. ऐतिहासिक खोजपूर्ण विवेचना, ग्रन्थ की भाषा आदि का विमर्श भी प्रस्तावना में विस्तार से उपलब्ध है। ग्रन्थान्त में 6 परिशिष्ट ततोऽधिक शोध सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

प्रमेयरत्नमाला- यह ग्रन्थ जैनन्याय विद्या में प्रवेश कराने के लिये विरचित आद्य सूत्र ग्रन्थ माणिक्यनन्दी रचित परीक्षामुख के सूत्रों पर लघु अनन्तवीर्य द्वारा रचित लघुवृत्ति है। जिस प्रकार ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र है, उसी प्रकार जैन न्याय में प्रवेश हेतु माणिक्यनन्दी ने विक्रम की दशम शताब्दी में परीक्षामुख ग्रन्थ रचकर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की।

परीक्षामुख पर आचार्य प्रभाचन्द्र का प्रमेयकमल मार्तण्ड, भट्टारक चारुकीर्ति ने प्रमेय रत्नालंकार एवम् प्रस्तुत प्रमेयरत्नमाला आदि टीकाएँ लिखी गयी हैं।

ग्रन्थ में छह समुद्देशों में मुख्यत: प्रमाण एवं प्रमाणभास का वर्णन है। प्रथम समुद्देश में प्रमाण का स्वरूप, विशेषणों की सार्थकता, प्रमाण के स्व-पर व्यवसायात्मकता की सिद्धि, प्रमाण का प्रामाण्य कथञ्चित् स्वत: कथाञ्चद् परत: सिद्ध किया गया है।

द्वितीय समुद्देश में प्रमाण के भेदों का वर्णन कर अर्थ एवम् आलोक के ज्ञान की कारणता का निरास सयुक्ति रीति से प्रतिपादित है। तृतीय समुद्देश में

परोक्ष प्रमाण का स्वरूप परोक्ष के भेद, हेतु का स्वरूप पक्ष का प्रतिपादन अनुमान के पञ्चावयव वाक्यों, उपनय और निगमन को अनुमानाङ्ग. मानने में दोषोद्भावन आदि का वर्णन है। चतुर्थ समुद्देश में सामान्य-विशेषात्मक उभय-रूप विषय की सिद्धि की गयी है। पञ्चम समुद्देश में प्रमाण के फल पर चर्चा की गयी है। षष्ठ समुद्देश में प्रमाणाभास का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है।

पं. श्री हीरालाल जी शास्त्री ने प्रस्तुत प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थ की हिन्दी व्याकरण अज्ञान-कर्तृक टिप्पण एवम् पण्डित श्री जयचन्द्र जी की हिन्दी वचनिका के आधार पर की है।

ग्रन्थ की प्रस्तावना जैन एवम् बौद्ध दर्शन के ख्यातिलब्ध विद्वान प्रो. उदयचन्द्र जी जैन ने लिखी है। जिसमें आपने अष्टसहस्री के टिप्पण एवम् प्रकृत ग्रन्थ के टिप्पण की तुलना कर टिप्पणकार का नाम लघुसमन्तभद्र सिद्ध किया है।

हिन्दी व्याख्याकार पण्डित हीरालाल जी ने प्रकृत ग्रन्थ के सरल अनुवाद के साथ ग्रन्थ की नाना ग्रन्थियों को विशेषार्थ में उद्घाटित किया है। न्यायग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों के प्रचुरता के साथ शब्दलाघव की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसके कारण अर्थ खुलासा करना टेढ़ी खीर हो जाता है, परन्तु लघुसमन्तभद्र के टिप्पण एवम् पं. श्री छावड़ा जी वचनिका के आधार पर ग्रन्थ के हार्द को हस्तामलकवत् विशद किया है। ग्रन्थ में सम्पूर्ण टिप्पण फुटनोट में संयोजित ग्रन्थ के महत्त्व को द्विगुणित किया है। ग्रन्थान्त में टीकाकार की प्रशस्ति, सूत्रपाठ, ग्रन्थ के सूत्रों की प्रमाणमीमांसा, प्रमाणनयतत्त्वालोक, से तुलना की तालिका, पारिभाषिक शब्द सूची, ग्रन्थोद्धृत गद्यावतरण एवं पद्यावतरणसूची (सन्दर्भ), प्र.र.मा.कार रचित श्लोक, टिप्पणस्थ श्लोक सूची, ग्रन्थागत दार्शनिक, ग्रन्थ, एवम् जैनाचार्यों की सूची सहित नगर देश नाम सूची 16 परिशिष्ट देकर ग्रन्थ की उपयोगिता को बढ़ाते हुए सम्पादन पद्धति के प्रतिमानों की पालना की गयी है।

निष्कर्षत: प्रस्तुत अनुवाद एवम् व्याख्या पण्डित जी के अध्यवसाय एवम्

न्याय विद्या पर उनके गहन अध्ययन की परिचायिका है एवम् विद्यार्थियों के साथ एतद्विषयक विद्वानों के लिये भी उपयोगी है।

श्रावकाचार संग्रह (पांच भाग)

पं. श्री हीरालालजी ने श्रावकाचार विषय के विविध आचार्यों के मन्तव्यों के एकत्र संयोजन हेतु तथा श्रावकाचारों के क्रमिक विकास के अध्ययनार्थ शोधार्थियों के सौविध्य हेतु अनेक सरस्वती भण्डारों से खोज-खोज कर एतद्विषयक सामग्री का संकलन कर तथा पुराणों में आगत श्रावकाचार विषयक सामग्री का संयोजनकर एवम् विद्वत्तापूर्ण सम्पादन एवम् अनुवाद के साथ 33 श्रावकाचारों को 5 जिल्दों में प्रकाशन का कार्य किया है।

इसके पूर्व आपके द्वारा वसुनन्दिश्रावकाचार एवम् जैन धर्मामृत का सुन्दर सम्पादन एवम् अनुवाद भा. ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित कराया गया था।

वीरोदय महाकाव्य- वींसवीं शताब्दी के मूर्धन्य महाकवि बृहत्चतुष्ठयी की रचना जयोदय महाकाव्य के रचयिता ब्र. भूरामल शास्त्री द्वारा रससिद्ध लेखनी से प्रस्तुत वीरोदय महाकाव्य का सुन्दर सम्पादन भी आपकी प्रतिभाद्वारा किया गया है, यद्यपि उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्राचीन हिन्दी में महाकवि ने स्वयं किया था, पं. जी ने रूपान्तरण के साथ सम्पादन किया एवम् महाकाव्य के नायक भ. महावीर चरित विषयक दिगम्बर एवम् श्वेताम्बर साहित्य का आलोडन कर उसका नवनीत प्रस्तुत ग्रन्थ में किया है।

विशिष्ट बात यह कि प्रस्तावना में ग्रन्थ प्रकाशन काल तक अप्रकाशित महावीर चरित्र विषयक सामग्री का सार भी प्रस्तुत किया जिसमें-असगकवि का वर्धमान चरित, भट्टारक कीर्ति विरचित वीरवर्धमान काव्य, रइधु विरचित - महावीर चरित सिरिहर विरचित-वड्ढमाणचरिउ, कुमुदचन्द्र विरचित-महावीरास, आदि का अध्ययन सार प्रस्तुत किया है। सारांशत: सम्पादक महोदय ने वीरोदय महाकाव्य के वैशिष्ट्य के प्रतिपादन के साथ अपनी विशाल प्रस्तावना में यत्र तत्र उपलब्ध दिगम्बर एवं श्वेताम्बर आचार्य प्रणीत संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश एवम् हिन्दी भाषा निबद्ध महावीर चरितों को तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर जिज्ञासुजगत् पर महदुपकार किया है।

महावीरकाल की सामाजिक दशा एवम् जातिवादी व्यवस्था की मीमांसा करते हुए प्रस्तावना में वैदिक एवम् बौद्ध साहित्य का भरपूर उपयोग करते हुए उनके मत सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं।

इन सभी ग्रन्थों का सम्पादन पण्डित जी द्वारा अधुनातन साहित्य मीमांसक विद्वानों द्वारा स्वीकृत मानदण्डों के अनुरूप ही किया गया। तदनुसार ग्रन्थों के शुद्ध एवम् प्रामाणिक पाठों हेतु न्यूनतम तीन पाण्डुलिपियों का उपयोग किया जिसमें सर्वाधिक शुद्ध प्रति मूल रूप में देकर पादटिप्पण में अन्य प्रतियों के पाठभेद का संकेत किया गया। पादटिप्पणियों में सम्बन्धित विषय में अन्य आचार्यों के मतों का उल्लेख ससन्दर्भ किया गया।

पण्डित जी द्वारा सम्पादित ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता ग्रन्थारम्भ में उनके बहुविद्या-वेत्तृत्व की निदर्शक विद्वता पूर्ण **प्रस्तावनाएँ** हैं, जिनमें ग्रन्थकार का काल निर्धारण, आचार्य परम्परा - गुर्वावलि पूर्ववर्ती आचार्यों का रचना प्रभाव व रचना का परवर्ती आचार्यों पर प्रभाव ग्रन्थ विषयक अन्य साहित्य का वर्णन ग्रन्थ का प्रतिपाद्य एवम् उस पर तुलनात्मक अध्ययन व ऊहापोह ग्रन्थ की भाषा शैली प्रयुक्त पाण्डुलिपियों की प्रति का परिचय, उनके गहन अध्यवसाय एवम् विषय-पारंगतता के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

उनके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों की विशेषताओं में दूसरी प्रमुख विशेषता है, ग्रन्थान्त में विविध **परिशिष्टों** की संयोजना। परिशिष्टों में यदि सूत्र ग्रन्थ है तो सकल सूत्रों सूची, पद्यमय ग्रन्थों में ग्रन्थ के पद्यों की अकारादिक्रम से पद्यानुक्रमणिका, ग्रन्थागत अवतरणों/उद्धरणों की सूची एवम् उनके सन्दर्भ, ग्रन्थोल्लिखित ऐतिहासिक राजा, आचार्य, श्रावक, आदि की सूची भौगोलिक सूची ग्रन्थनामोल्लेखों की सूची वंशो की सूची, जोडी गयी हैं, जो अध्येता विद्वानों के लिये काफी उपयोगी साबित होती हैं।

-सेठ जी की नसियां
ब्यावर